Chapter अठहत्तर

दन्तवक्र, विदूरथ तथा रोमहर्षण का वध

यह अध्याय बतलाता है कि भगवान् कृष्ण ने किस तरह दन्तवक्र तथा विदूरथ को मारा और वे कैसे वृन्दावन गये तथा फिर द्वारका लौट आये। इसमें यह भी वर्णन है कि बलदेव ने किस तरह युद्ध के लिए आये रोमहर्षण सूत को मारा।

अपने मित्र शाल्व की मृत्यु का बदला लेने पर उतारू दन्तवक्र अपने हाथ में गदा लिए युद्धभूमि में प्रकट हुआ। श्रीकृष्ण ने भी अपनी गदा उठाई और उसके समक्ष आये। तब दन्तवक्र ने कटु वचन कहकर भगवान् का अपमान किया और उनके सिर पर भीषण प्रहार किया। इससे कृष्ण बिल्कुल हिले-डुले नहीं, अपितु दन्तवक्र की छाती को चीर कर उसके हृदय को छिन्न-भिन्न कर दिया। दन्तवक्र

का एक भाई था, जिसका नाम विदूरथ था। वह दन्तवक्र की मृत्यु सुनकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। वह अपनी तलवार लेकर कृष्ण का सामना करने आया, किन्तु भगवान् ने अपने सुदर्शन चक्र से उसका सिर काट लिया। तब भगवान् कृष्ण दो मास के लिए वृन्दावन गये और अन्त में द्वारका लौट आये।

जब बलदेवजी ने सुना कि कौरव तथा पाण्डव युद्ध करने ही वाले हैं, तो तटस्थ बने रहने के उद्देश्य से तीर्थयात्रा पर जाने के बहाने उन्होंने द्वारका को छोड़ दिया। उन्होंने प्रभास, त्रितकूप तथा विशाल जैसे पवित्र स्थानों में स्नान किया और अन्त में पवित्र नैमिषारण्य वन में पहुँचे, जहाँ बड़े-बड़े ऋषि अग्नि यज्ञ कर रहे थे। जहाँ एक ओर एकत्र ऋषियों द्वारा पूजित होकर उन्हें सम्मानित-पद प्रदान किया गया, वहीं वक्ता के आसन पर बैठा रोमहर्षण सूत उनके सम्मान में खड़ा नहीं हुआ। इस अपराध से अत्यन्त कुपित होकर बलराम ने कुश घास के तिनके की नोक से छूकर रोमहर्षण को मार डाला।

एकत्र ऋषिगण बलदेव के इस कृत्य से विचलित हो गये और उनसे इस प्रकार बोले, ''आपने अनजाने एक ब्राह्मण का वध किया है, अत: हमारी विनती है कि यद्यपि आप वैदिक आदेशों से ऊपर हैं आप इस पाप का प्रायश्चित्त करके आम जनता के लिए एक पूर्ण आदर्श स्थापित करें।'' तब श्रीबलदेव ने इस वैदिक कथन का कि 'पुत्र स्वयं पिता के रूप में जन्म लेता है' अनुसरण करके रोमहर्षण के पुत्र उग्रश्रवा को पुराणों के वक्ता का पद प्रदान किया और ऋषियों की इच्छानुसार उग्रश्रवा को अचूक संवेदनात्मक क्षमता सहित दीर्घायु प्रदान करने का वायदा किया।

ऋषियों के लिए कुछ और करने की इच्छा से बलदेव ने बल्वल नामक असुर का वध करने का वचन दिया, जिसने यज्ञशाला को दूषित कर रखा था। अन्त में ऋषियों के कहने पर वे भारत वर्ष के समस्त पवित्र स्थानों की एक वर्ष तक तीर्थयात्रा करने के लिए सहमत हो गए।

श्रीशुक उवाच
शिशुपालस्य शाल्वस्य पौण्ड्रकस्यापि दुर्मति: ।
परलोकगतानां च कुर्वन्पारोक्ष्यसौहृदम् ॥ १ ॥
एक: पदाति: सङ्क्रुद्धो गदापाणि: प्रकम्पयन् ।
पद्भ्यामिमां महाराज महासत्त्वो व्यदृश्यत ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; शिशुपालस्य—शिशुपाल का; शाल्वस्य—शाल्व का; पौण्ड्रकस्य—पौण्ड्रक का; अपि—भी; दुर्मति:—बुरे हृदय वाला (दन्तवक्र); पर-लोक—अन्य लोक को; गतानां—गये हुओं का; च—तथा;

कुर्वन्—करते हुए; पारोक्ष्य—दिवंगतों के लिए; सौहृदम्—मैत्री कर्म; एकः—अकेला; पदातिः—पैदल; सङ्क्रुद्धः—क्रुद्ध; गदा—गदा; पाणिः—अपने हाथ में; प्रकम्पयन्—हिलाते हुए; पद्भ्याम्—अपने पैरों से; इमम्—इस (पृथ्वी) को; महा-राज—हे महान् राजा (परीक्षित); महा—महान्; सत्त्वः—शारीरिक शक्ति वाला; व्यदृश्यत—देखा गया।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : अन्य लोकों को गये हुए शिशुपाल, शाल्व तथा पौण्ड्रक के प्रति मैत्री-भाव होने से दुष्ट दन्तवक्र बहुत ही क्रुद्ध होकर युद्धभूमि में प्रकट हुआ। हे राजन्, एकदम अकेला, पैदल एवं हाथ में गदा लिए उस बलशाली योद्धा ने अपने पदचाप से पृथ्वी को हिला दिया।

तं तथायान्तमालोक्य गदामादाय सत्वरः ।
अवप्लुत्य रथात्कृष्णः सिन्धुं वेलेव प्रत्यधात् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; तथा—इस तरह; आयान्तम्—पास आते हुए; आलोक्य—देखकर; गदाम्—अपनी गदा; आदाय—लेकर; सत्वरः—तेजी से; अवप्लुत्य—नीचे कूद कर; रथात्—अपने रथ से; कृष्णः—भगवान् कृष्ण; सिन्धुम्—समुद्र को; वेला—किनारा; इव—सदृश; प्रत्यधात्—रोका।

दन्तवक्र को पास आते देखकर भगवान् कृष्ण ने तुरन्त अपनी गदा उठा ली। वे अपने रथ से नीचे कूद पड़े और आगे बढ़ रहे अपने प्रतिद्वन्द्वी को रोका, जिस तरह तट समुद्र को रोके रहता है।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, ''जैसे ही कृष्ण दन्तवक्र के समक्ष प्रकट हुए उसकी वीरतापूर्ण अग्रगति तुरन्त रुक गयी, जिस तरह सागर की अत्यन्त भयावनी लहरें किनारे द्वारा रोक ली जाती हैं।''

गदामुद्यम्य कारूषो मुकुन्दं प्राह दुर्मदः ।
दिष्ट्या दिष्ट्या भवानद्य मम दृष्टिपथं गतः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

गदाम्—अपनी गदा को; उद्यम्य—घुमाकर; कारूषः—करूष का राजा (दन्तवक्र); मुकुन्दम्—कृष्ण से; प्राह—बोला; दुर्मदः—मिथ्या गर्व से उन्मत्त; दिष्ट्या—सौभाग्य से; दिष्ट्या—सौभाग्य से; भवान्—आप; अद्य—आज; मम—मेरी; दृष्टि—दृष्टि के; पथम्—पथ पर; गतः—आये हुए।

अपनी गदा उठाते हुए करूष के दुर्मद राजा ने भगवान् मुकुन्द से कहा, ''अहो भाग्य! अहो भाग्य! कि तुम आज मेरे समक्ष आये हो।''

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी बतलाते हैं कि तीन जन्मों तक प्रतीक्षा करते रहने के बाद दन्तवक्र, जो पहले वैकुण्ठ में द्वारपाल था, अब वैकुण्ठ-लोक जा सका। अतएव उसके कथन का दिव्य भाव यह है : ''मैं कितना भाग्यशाली हूँ कि आज मैं वैकुण्ठ में अपनी वास्तविक स्थिति में वापस जा

सकता हूँ।''

अगले श्लोक में दन्तवक्र श्रीकृष्ण को *मातुलेय* अर्थात् ममेरा भाई कहता है। दन्तवक्र की माता श्रुतश्रवा कृष्ण के पिता वसुदेव की बहन थी।

त्वं मातुलेयो नः कृष्ण मित्रध्रुङ्मां जिघांससि ।
अतस्त्वां गदया मन्द हनिष्ये वज्रकल्पया ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; मातुलेयः—मामा का लड़का; नः—हमारे; कृष्ण—हे कृष्ण; मित्र—मेरे मित्रों के साथ; ध्रुक्—हिंसा करने वाले; माम्—मुझको; जिघांससि—मारना चाहते हो; अतः—इसलिए; त्वाम्—तुमको; गदया—अपनी गदा से; मन्द—रे मूर्ख; हनिष्ये—मैं मार डालूँगा; वज्र-कल्पया—वज्र सरीखी।

''हे कृष्ण तुम मेरे ममेरे भाई हो, किन्तु तुमने मेरे मित्रों के साथ हिंसा की है और अब मुझे भी मार डालना चाहते हो। इसलिए रे मूर्ख! मैं तुम्हें अपनी वज्र सरीखी गदा से मार डालूँगा।

तात्पर्य : आचार्यों ने इस श्लोक के तृतीय पद का वैकल्पिक व्याकरणिक विभाजन इस प्रकार किया है—*अतस् त्वां गदया अमन्द।* इस तरह दन्तवक्र कहता है, ''हे कृष्ण, तुम *अमन्द* (मूर्ख नहीं) हो इसलिए अपनी शक्तिशाली गदा से तुम मुझे भगवद्धाम भेज दोगे।'' यही इस श्लोक का गूढ़ार्थ है।

तर्ह्यानृण्यमुपैम्यज्ञ मित्राणां मित्रवत्सलः ।
बन्धुरूपमरिं हत्वा व्याधिं देहचरं यथा ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

तर्हि—तब; आनृण्यम्—ऋण से उऋण; उपैमि—हो सकूँगा; अज्ञ—रे मूर्ख; मित्राणाम्—मित्रों के; मित्र-वत्सलः—अपने मित्रों का प्रिय; बन्धु—पारिवारिक सदस्य के; रूपम्—रूप में; अरिम्—शत्रु को; हत्वा—मार कर; व्याधिम्—रोग; देह-चरम्—शरीर में; यथा—जिस तरह।

''हे बुद्धिहीन! अपने मित्रों का कृतज्ञ मैं तुम्हें मार कर तब उनके ऋण से उऋण हो जाऊँगा। सम्बन्धी के रूप में तुम मेरे शरीर के भीतर रोग की तरह प्रच्छन्न शत्रु हो।''

तात्पर्य : आचार्यों के अनुसार *अज्ञ* शब्द सूचित करता है कि भगवान् कृष्ण की तुलना में कोई भी व्यक्ति उनसे अधिक बुद्धिमान नहीं है। यही नहीं, *बन्धु-रूपम्* शब्द सूचित करता है कि कृष्ण वास्तव में हर एक के असली मित्र हैं। *व्याधिम्* शब्द बतलाता है कि भगवान् कृष्ण परमात्मा हैं, हृदय के भीतर ध्यान करने की वस्तु हैं और वे हमारे मानसिक क्लेश को दूर करते हैं। आचार्य लोग *हत्वा* का *ज्ञात्वा* करते हैं। दूसरे शब्दों में, कृष्ण को सही ढंग से जान लेने पर मनुष्य अपने सारे मित्रों को मुक्त बना

सकता है।

एवं रूक्षैस्तुदन्वाक्यैः कृष्णं तोत्रैरिव द्विपम् ।
गदयाताडयन्मूर्ध्नि सिंहवद्व्यनदच्च सः ॥ ७॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; रूक्षैः—कर्कश, कटु; तुदन्—कष्ट देने वाले; वाक्यैः—शब्दों से; कृष्णम्—कृष्ण को; तोत्रैः—अंकुशों से; इव—सदृश; द्विपम्—हाथी को; गदया—अपनी गदा से; अताडयत्—उन पर प्रहार किया; मूर्ध्नि—सिर पर; सिंह-वत्—शेर की तरह; व्यनदत्—गर्जना की; च—तथा; सः—उसने।

इस तरह कटु वचनों से कृष्ण को उत्पीड़ित करने का प्रयास करते हुए, जिस तरह किसी हाथी को तेज अंकुश चुभाया जा रहा हो, दन्तवक्र ने अपनी गदा से भगवान् के सिर पर आघात किया और शेर की तरह गर्जना की।

गदयाभिहतोऽप्याजौ न चचाल यदूद्वहः ।
कृष्णोऽपि तमहन्गुर्व्या कौमोदक्या स्तनान्तरे ॥ ८॥

शब्दार्थ

गदया—गदा से; अभिहतः—प्रताड़ित; अपि—यद्यपि; आजौ—युद्धक्षेत्र में; न चचाल—हिला-डुला नहीं; यदु-उद्वहः—यदुओं के उद्धारक; कृष्णः—कृष्ण ने; अपि—भी; तम्—उसको (दन्तवक्र को); अहन्—मारा; गुर्व्या—भारी; कौमोदक्या—अपनी कौमोदकी गदा से; स्तन-अन्तरे—छाती के बीच।

यद्यपि दन्तवक्र की गदा से उन पर आघात हुआ, किन्तु यदुओं के उद्धारक कृष्ण युद्धस्थल में अपने स्थान से रंच-भर भी नहीं हिले। प्रत्युत अपनी भारी कौमोदकी गदा से उन्होंने दन्तवक्र की छाती के बीचों-बीच प्रहार किया।

गदानिर्भिन्नहृदय उद्वमन्रुधिरं मुखात् ।
प्रसार्य केशबाह्वङ्घ्रीन्धरण्यां न्यपतद्व्यसुः ॥ ९॥

शब्दार्थ

गदा—गदा से; निर्भिन्न—खण्ड-खण्ड हुआ; हृदयः—हृदय; उद्वमन्—वमन करते हुए; रुधिरम्—रक्त; मुखात्—मुख से; प्रसार्य—बाहर फेंक कर; केश—बाल; बाहु—भुजाएँ; अङ्घ्रीन्—तथा पाँव; धरण्याम्—धरती पर; न्यपतत्—गिर पड़ा; व्यसुः—निर्जीव।

गदा के प्रहार से दन्तवक्र का हृदय छितरा गया, जिससे वह रुधिर वमन करने लगा और निर्जीव होकर भूमि पर गिर गया, उसके बाल बिखर गये तथा उसकी भुजाएँ और पाँव छितरा गये।

ततः सूक्ष्मतरं ज्योतिः कृष्णमाविशदद्भुतम् ।
पश्यतां सर्वभूतानां यथा चैद्यवधे नृप ॥ १० ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; सूक्ष्म-तरम्—अत्यन्त सूक्ष्म; ज्योतिः—प्रकाश; कृष्णम्—कृष्ण में; आविशत्—प्रविष्ट हुआ; अद्भुतम्—विचित्र; पश्यताम्—देखते-देखते; सर्व—सभी; भूतानाम्—जीवों के; यथा—जिस तरह; चैद्य-वधे—जब शिशुपाल मारा गया था; नृप—हे राजा (परीक्षित)।

हे राजन्, तब (उस असुर के शरीर से) एक अत्यन्त सूक्ष्म एवं अद्भुत प्रकाश की चिनगारी सबों के देखते-देखते (निकली और) कृष्ण में प्रवेश कर गई, ठीक उसी तरह जब शिशुपाल मारा गया था।

विदूरथस्तु तद्भ्राता भ्रातृशोकपरिप्लुतः ।
आगच्छदसिचर्माभ्यामुच्छ्वसंस्तज्जिघांसया ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

विदूरथः—विदूरथ; तु—लेकिन; तत्—उसका, दन्तवक्र का; भ्राता—भाई; भ्रातृ—भाई के; शोक—शोक में; परिप्लुतः—मग्न; आगच्छत्—आया; असि—तलवार; चर्माभ्याम्—तथा ढाल समेत; उच्छ्वसन्—तेजी से साँस लेता, हाँफता; तत्—उसको (कृष्ण को); जिघांसया—मारने की इच्छा से।

लेकिन तभी दन्तवक्र का भाई विदूरथ अपने भाई की मृत्यु के शोक में डूबा हाँफता हुआ आया और वह अपने हाथ में तलवार तथा ढाल लिए हुए था। वह भगवान् को मार डालना चाहता था।

तस्य चापततः कृष्णश्चक्रेण क्षुरनेमिना ।
शिरो जहार राजेन्द्र सकिरीटं सकुण्डलम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसके; च—तथा; आपततः—आक्रमण कर रहे; कृष्णः—कृष्ण ने; चक्रेण—अपने सुदर्शन चक्र से; क्षुर—छूरे की तरह; नेमिना—धार वाले; शिरः—सिर; जहार—काट लिया; राज-इन्द्र—हे राजाओं में श्रेष्ठ; स—सहित; किरीटम्—मुकुट; स—सहित; कुण्डलम्—कुण्डल।

हे राजेन्द्र, ज्योंही विदूरथ ने कृष्ण पर आक्रमण किया, उन्होंने अपने छुरे जैसी धार वाले सुदर्शन चक्र से उसके सिर को मुकुट तथा कुंडलों समेत काट डाला।

एवं सौभं च शाल्वं च दन्तवक्रं सहानुजम् ।
हत्वा दुर्विषहानन्यैरीडितः सुरमानवैः ॥ १३ ॥
मुनिभिः सिद्धगन्धर्वैर्विद्याधरमहोरगैः ।
अप्सरोभिः पितृगणैर्यक्षैः किन्नरचारणैः ॥ १४ ॥

उपगीयमानविजयः कुसुमैरभिवर्षितः ।
वृतश्च वृष्णिप्रवरैर्विवेशालङ्कृतां पुरीम् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; सौभम्—सौभ-यान को; च—तथा; शाल्वम्—शाल्व को; च—तथा; दन्तवक्रम्—दन्तवक्र को; सह—सहित; अनुजम्—उसके छोटे भाई विदूरथ को; हत्वा—मार कर; दुर्विषहान्—दुर्लंघ्य; अन्यैः—अन्यों द्वारा; ईडितः—प्रशंसित; सुर—देवताओं; मानवैः—तथा मनुष्यों द्वारा; मुनिभिः—तथा मुनियों द्वारा; सिद्ध—सिद्धों; गन्धर्वैः—तथा गन्धर्वों द्वारा; विद्याधर—विद्याधर लोक के निवासियों द्वारा; महा-उरगैः—तथा दैवी सर्पों द्वारा; अप्सरोभिः—स्वर्ग की नर्तकियों द्वारा; पितृ-गणैः—पितरों द्वारा; यक्षैः—यक्षों द्वारा; किन्नर-चारणैः—किन्नरों तथा चारणों द्वारा; उपगीयमान—स्तुति किये गये; विजयः—विजय; कुसुमैः—फूलों से; अभिवर्षितः—वर्षा किये गये; वृतः—घिरा हुआ; च—तथा; वृष्णि-प्रवरैः—अग्रणी वृष्णियों द्वारा; विवेश—प्रवेश किया; अलङ्कृताम्—सजी हुई; पुरीम्—अपनी राजधानी द्वारका में।

शाल्व तथा उसके सौभ-यान के साथ साथ दन्तवक्र तथा उसके छोटे भाई को, जो सब किसी अन्य प्रतिद्वन्द्वी के समक्ष अजेय थे, इस तरह विनष्ट करने के बाद देवताओं, मनुष्यों, ऋषियों, सिद्धों, गन्धर्वों, विद्याधरों, महोरगों के अतिरिक्त अप्सराओं, पितरों, यक्षों, किन्नरों तथा चारणों ने भगवान् की प्रशंसा की। जब ये सब उनका यशोगान कर रहे थे और उन पर फूल बरसा रहे थे, तो भगवान् गण्य-मान्य वृष्णियों के साथ साथ उत्सवपूर्वक सजाई हुई अपनी राजधानी में प्रविष्ट हुए।

एवं योगेश्वरः कृष्णो भगवान्जगदीश्वरः ।
ईयते पशुदृष्टीनां निर्जितो जयतीति सः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह; योग—योग के; ईश्वरः—स्वामी; कृष्णः—कृष्ण; भगवान्—भगवान्; जगत्—ब्रह्माण्ड के; ईश्वरः—स्वामी; ईयते—प्रतीत होते हैं; पशु—पशुओं की तरह; दृष्टीनाम्—दृष्टिवानों को; निर्जितः—पराजित; जयति—विजयी होते हैं; इति—मानो; सः—वह।

इस तरह समस्त योगशक्ति के स्वामी तथा ब्रह्माण्ड के स्वामी, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण सदैव विजयी होते हैं। एकमात्र पाशविक दृष्टि वाले ही यह सोचते हैं कि कभी कभी उनकी हार होती है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने श्रीमद्भागवत के इस अनुभाग की विस्तृत व्याख्या की है, जो निम्नवत् है :

दन्तवक्र वध के विषय में *पद्म पुराण* के उत्तर खण्ड (२७९) में निम्नलिखित गद्यांश में विस्तृत जानकारी पाई जाती है *अथ शिशुपालं निहतं श्रुत्वा दन्तवक्रः कृष्णेन सह योद्धुं मथुराम् आजगाम्। कृष्णस्तु तच्छ्रुत्वा रथमारुह्य मथुराम् आययौ।* ''तब यह सुन कर कि शिशुपाल मारा गया है, दन्तवक्र

कृष्ण के विरुद्ध लड़ने मथुरा गया। अत: जब कृष्ण ने यह सुना, तो वे अपने रथ पर सवार होकर मथुरा गये।''

तयोर्दन्तवक्रवासुदेवयोरहोरात्रं मथुराद्वारि संग्राम: समवर्तत/कृष्णस्तु गदया तं जघान। स तु चूर्णितसर्वांगो वज्रनिर्भिन्नो महीधर इव गतासुरवनितले निपतात। सोऽपि हरे: सारूप्येण योगिगम्यं नित्यानन्दसुखदं शाश्वतं परमं पदमवाप—''उन दोनों—दन्तवक्र तथा वासुदेव—के बीच मथुरा के द्वार पर युद्ध शुरू हुआ जो पूरे दिन तथा पूरी रात चलता रहा। अन्त में कृष्ण ने अपनी गदा से दन्तवक्र पर प्रहार किया, जिससे दन्तवक्र निर्जीव होकर भूमि पर गिर गया। उसके सारे अंग उसी तरह चकना चूर हो गये, जिस तरह वज्र से पर्वत क्षत-विक्षत हो जाता है। दन्तवक्र को सारूप्य मुक्ति मिली और इस तरह उसने भगवान् के शाश्वत परम धाम को प्राप्त किया जो पूर्ण योगियों को प्राप्त हो पाता है और जो शाश्वत आध्यात्मिक आनन्द प्रदान करने वाला है।''

इत्थं जयविजयौ सनकादिशापव्याजेन केवलं भगवतो लीलार्थं संसृतावावतीर्य जन्मत्रयेऽपि तेनैव निहतौ जन्मत्रयावसाने मुक्तिं अवाप्तौ—''इस तरह जय-विजय ने बाहरी तौर पर सनक तथा उसके भाइयों द्वारा शापित होने किन्तु आन्तरिक रूप से भगवान् की लीलाओं को सुगम बनाने के लिए इस जगत में अवतार लिया था और लगातार तीन जन्मों तक भगवान् के हाथों से मारे जाते रहे। तत्पश्चात् तीन जन्मों के पूरा होने पर उन्होंने मुक्ति प्राप्त की।''

पद्म पुराण के इस गद्यांश में *कृष्णस्तु तच्छ्रुत्वा* शब्दों से सूचित होता है कि कृष्ण ने नारद से ही जो मन की तीव्र गति से भ्रमण करते हैं, सुना होगा कि दन्तवक्र मथुरा गया हुआ है। इसलिए शाल्व को मारने के तुरन्त बाद, द्वारका में प्रविष्ट होने के पूर्व अपने तेज रथ पर चढ़ कर जो मन की तीव्र गति से चलता है एक ही क्षण में मथुरा के निकट जा पहुँचे और वहाँ दन्तवक्र को देखा। इसीलिए आज भी द्वारका की ओर अभिमुख मथुरा के द्वार के पास दतिहा नामक ग्राम है। यह नाम संस्कृत के *दन्तवक्र-हा*—दन्तवक्र को मारने वाला—से निकला है। इस ग्राम की स्थापना कृष्ण के प्रपौत्र वज्र ने की थी।

पद्म पुराण के इसी विभाग में आगे कहा गया है : कृष्णोऽपि तं हत्वा यमुनाम् उत्तीर्य नन्दव्रजं गत्वा सोत्कण्ठौ पितरावभिवाद्याश्वास्य ताभ्यां साश्रुसेकम् आलिंगित: सकलगोपवृद्धान् प्रणम्य बहुवस्त्राभरणादिभिस्तत्रस्थान् सन्तर्पयामास—''उसे (विदूरथ को) मारने के बाद कृष्ण ने यमुना पार

की और नन्द के ग्वालग्राम गये जहाँ उन्होंने अपने शोकसंतप्त माता-पिता को आदर सहित सान्त्वना प्रदान की। उन्होंने अपने आँसुओं से कृष्ण को भिगो दिया और उनका आलिंगन किया। तब भगवान् ने ज्येष्ठ गोपों को नमस्कार किया तथा वस्त्रों, आभूषणों इत्यादि विविध भेंटों से सारे निवासियों को कृतकृत्य किया।''

कालिन्द्याः पुलिने रम्ये पुण्यवृक्षसमाचिते।

गोपनारीभिरनिशं क्रीडयामास केशवः॥

रम्यकेलिसुखेनैव गोपवेशधरः प्रभुः।

बहुप्रेमरसेनात्र मासद्वयमुवास ह॥

''भगवान् केशव ने कालिन्दी के मनोहर तट पर, जो पवित्र वृक्षों से भरा-पुरा था, गोपियों के साथ लगातार क्रीड़ा की। इस तरह भगवान् गोप का स्वरूप बनाकर वहाँ दो मास तक पारस्परिक प्रेम के विविध रसों में अन्तरंग लीलाओं का आनन्द लूटते रहे।''

अथ तत्रस्था नन्दगोपादयः सर्वे जनाः पुत्रदारादिसहिता वासुदेवप्रसादेन दिव्यरूपधरा विमानम् आरूढाः परमं वैकुण्ठलोकम् अवापुः। कृष्णस्तु नन्दगोप व्रजौकसां सर्वेषां निरामयं स्वपदं दत्त्वा दिवि देवगणै संस्तूयमानो द्वारावतीं विवेश—''तब भगवान् वासुदेव की कृपा से नन्द तथा उस स्थान के अन्य सारे वासियों ने अपने बच्चों और पत्नियों सहित अपने नित्य आध्यात्मिक स्वरूप धारण किये, दैवी विमान में चढ़े और परम वैकुण्ठ-लोक (गोलोक वृन्दावन) चले गये। किन्तु भगवान् कृष्ण नन्दगोप तथा व्रज के अन्य वासियों को अपना दिव्यधाम जो सभी प्रकार के रोगों से रहित है, प्रदान करने के बाद आकाश-मार्ग से यात्रा करके द्वारका लौट आये, जबकि देवतागण उनकी स्तुति कर रहे थे।''

श्रील रूप गोस्वामी ने *लघु भागवतामृत* (१.४८८-८९) में इस गद्यांश की निम्नलिखित टीका की है—

व्रजेशादेर् अंशभूता ये द्रोणाद्या अवातरन्।

कृष्णस्तान् एव वैकुण्ठे प्राहिणोदिति साम्प्रतम्॥

प्रेष्ठेभ्योऽपि प्रियतमैर्जनैर्गोकुलवासिभिः।

वृन्दारण्ये सदैवासौ विहारं कुरुते हरिः॥

''चूँकि द्रोण तथा अन्य देवता पहले ही व्रजराज तथा वृन्दावन के अन्य भक्तों में भिन्नांशों के रूप में लीन होने के लिए पृथ्वी पर अवतारित हुए थे, इसलिए इस बार भगवान् कृष्ण ने इन्हीं देव अंशों को वैकुण्ठ भेजा। भगवान् कृष्ण वृन्दावन में अपने गोकुल निवासी घनिष्ठ भक्तों के साथ निरन्तर लीलाओं का आनन्द लूटते हैं। ये लोग उन्हें अपने अन्य प्रिय भक्तों से भी बढ़कर प्रिय हैं।''

पद्म पुराण के गद्यांश में *नन्दगोपादय: सर्वे जना: पुत्रदारादि सहिता:* (नंद, गोप और अन्य में, उनकी संतान व पत्नियाँ सम्मिलित हैं) में *पुत्र* शब्द सूचक है कृष्ण, श्रीदामा तथा सुबल जैसे पुत्रों का और *दारा* शब्द यशोदा तथा राधारानी की माता कीर्तिदा जैसी पत्नियों का द्योतक है। *सर्वे जना:* (सब व्यक्ति) पद व्रज जनपद में रहने वाले हर व्यक्ति का द्योतक है। इस तरह वे सभी सर्वोच्च वैकुण्ठ-लोक—गोलोक—गये। *दिव्यरूपधरा:* पद सूचित करता है कि गोलोक में वे देवोचित लीलाओं में लगे रहते हैं, गोकुल की जैसी मानवोचित लीलाओं में नहीं। जिस तरह भगवान् रामचन्द्र के राजतिलक के समय सारे अयोध्यावासी सशरीर वैकुण्ठ ले जाये गये थे, उसी तरह कृष्ण के इस राजतिलक में व्रज के वासी गोलोक गये।

द्वारका से व्रज तक की कृष्ण की यात्रा की पुष्टि श्रीमद्भागवत के इस अंश (१.११.९) से होती है—यर्ह्यम्बुजाक्षापससार भो भवान् कुरून् मधून् वाथ सुहृद्दिदक्षया।तत्राब्दकोटिप्रतिम: क्षणो भवेत्—''हे कमलनयन भगवान्! जब भी आप अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों से भेंट करने मथुरा, वृन्दावन या हस्तिनापुर चले जाते हैं, तो आपकी अनुपस्थिति का हर क्षण लाख वर्षों-सा प्रतीत होता है।'' जब से बलदेव व्रज गये थे तभी से भगवान् कृष्ण वज्र जाकर अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों से भेंट करने की इच्छा मन में सँजोये थे, लेकिन द्वारका स्थित उनके माता-पिता तथा अन्य वृद्धजनों ने उन्हें अनुमति देने से इनकार कर रखा था। किन्तु अब शाल्व को मारने के बाद जब कृष्ण ने नारद से सुना कि दन्तवक्र मथुरा गया है, तो द्वारका में प्रवेश करने के पूर्व शीघ्र मथुरा जाने से कोई उन्हें मना नहीं कर सका। और दन्तवक्र को मारने के बाद उन्हें व्रज में रह रहे मित्रों तथा सम्बन्धियों से भेंट करने का सुअवसर भी प्राप्त होगा।

इस तरह सोचकर एवं गोपियों के प्रति उद्धव के द्वारा इंगित इन शब्दों *गायन्ति ते विशदकर्म* (भागवत १०.७१.९) का स्मरण करके वे वहाँ के निवासियों के विरह-भावों को दूर करने के लिए

व्रज गये। वे वृन्दावन में दो मास तक उसी तरह आनन्दपूर्वक रहे जिस तरह कंस को मारने के लिए मथुरा जाने के पूर्व रह रहे थे। तब, दो मास के बाद अपने माता-पिता तथा सम्बन्धियों-मित्रों के दैविक भागों को वैकुण्ठ ले जाकर संसार की नजरों से अपनी व्रज-लीलाएँ समेट लीं। इस तरह एक लोक के पूर्ण प्राकट्य में वे गोलोक गये, दूसरे में वे भौतिक आँखों से अदृश्य होकर व्रज में निरन्तर आनन्द लूटते रहे और उसके आगे वाले लोक में वे अपने रथ पर चढ़ कर अकेले ही द्वारका लौट आये। शौरसेन प्रदेश के लोगों ने सोचा कि दन्तवक्र का वध करने के बाद कृष्ण अपने माता-पिता तथा अन्य प्रियजनों से मिलने आये थे और अब द्वारका वापस जा रहे हैं। किन्तु व्रज के लोग यह न समझ पाये कि कृष्ण सहसा कहाँ अदृश्य हो गये, अत: वे सभी आश्चर्यचकित थे।

यही नहीं, शुकदेव गोस्वामी ने विचार किया कि महाराज परीक्षित शायद यह सोच सकते हैं कि ''जिन कृष्ण ने ग्वालों को सशरीर वैकुण्ठ प्राप्त करा दिया उन्हीं कृष्ण ने अपनी *मौषल लीला* में द्वारकावासियों को अशुभ स्थिति में क्यों पहुँचा दिया?'' इस तरह राजा, यदुओं के प्रति झुकाव होने से, इस व्यवस्था को अनुचित मान सकते हैं। इसीलिए शुकदेव गोस्वामी ने उन्हें *श्री पद्म पुराण* के उत्तर खण्ड में कही गई उपर्युक्त लीला को सुनने की अनुमति नहीं दी।

दसवें स्कंध पर सनातन गोस्वामी की *वैष्णव तोषणी* टीका में हमें लीलाओं का यह अनुक्रम प्राप्त होता है—सूर्यग्रहण के अवसर पर यात्रा, फिर राजसूय सभा, फिर द्यूत क्रीड़ा तथा द्रौपदी चीरहरण का प्रयास, तब पाण्डवों का बनवास, फिर शाल्व तथा दन्तवक्र का वध, तब कृष्ण का वृन्दावन जाना और अन्त में वृन्दावन लीलाओं का समापन।

श्रुत्वा युद्धोद्यमं राम: कुरूणां सह पाण्डवै: ।
तीर्थाभिषेकव्याजेन मध्यस्थ: प्रययौ किल ॥ १७॥

शब्दार्थ

श्रुत्वा—सुनकर; युद्ध—युद्ध के लिए; उद्यमम्—तैयारियाँ; राम:—बलराम ने; कुरूणाम्—कुरुओं के; सह—साथ; पाण्डवै:—पाण्डवों की; तीर्थ—तीर्थस्थानों में; अभिषेक—स्नान के; व्याजेन—बहाने; मध्य-स्थ:—तटस्थ, बीच-बचाव करने वाले; प्रययौ—कूच किया; किल—निस्सन्देह।

तब बलराम ने सुना कि कुरुगण पाण्डवों के साथ युद्ध की तैयारी कर रहे हैं। तटस्थ होने के कारण वे तीर्थस्थानों में स्नान के लिए जाने का बहाना करके वहाँ से कूच कर गये।

तात्पर्य : बलराम को दुर्योधन तथा युधिष्ठिर दोनों ही प्रिय थे, अतएव विषम स्थिति से बचने के

लिए वे चले गये। यही नहीं, विदूरथ को मारने के बाद भगवान् कृष्ण ने अपने हथियार रख दिये, किन्तु बलराम को तो अभी भी रोमहर्षण तथा बल्वल को मार कर पृथ्वी को असुरों के भार से छुटकारा दिलाना शेष था।

स्नात्वा प्रभासे सन्तर्प्य देवर्षिपितृमानवान् ।
सरस्वतीं प्रतिस्रोतं ययौ ब्राह्मणसंवृतः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

स्नात्वा—स्नान करके; प्रभासे—प्रभास में; सन्तर्प्य—तथा सम्मान देकर; देव—देवताओं; ऋषि—ऋषियों; पितृ—पूर्वजों; मानवान्—तथा मनुष्यों को; सरस्वतीम्—सरस्वती नदी को; प्रति-स्रोतम्—समुद्र की ओर बहने वाली; ययौ—गये; ब्राह्मण-संवृतः—ब्राह्मणों से घिरे हुए।

प्रभास में स्नान करके तथा देवताओं, ऋषियों, पितरों एवं वरेषु मानवों का सम्मान करने के बाद वे ब्राह्मणों को साथ लेकर सरस्वती के उस भाग में गये, जो पश्चिम में समुद्र की ओर बहती है।

पृथूदकं बिन्दुसरस्त्रितकूपं सुदर्शनम् ।
विशालं ब्रह्मतीर्थं च चक्रं प्राचीं सरस्वतीम् ॥ १९ ॥
यमुनामनु यान्येव गङ्गामनु च भारत ।
जगाम नैमिषं यत्र ऋषयः सत्रमासते ॥ २० ॥

शब्दार्थ

पृथु—चौड़ा; उदकम्—जल, पाट; बिन्दु-सरः—बिन्दु सरोवर; त्रित-कूपम् सुदर्शनम्—त्रितकूप तथा सुदर्शन नामक तीर्थस्थल; विशालम् ब्रह्म-तीर्थम् च—विशाल तथा ब्रह्मतीर्थ; चक्रम्—चक्रतीर्थ; प्राचीम्—पूर्व की ओर बहती; सरस्वतीम्—सरस्वती नदी; यमुनाम्—यमुना नदी के; अनु—किनारे-किनारे; यानि—जो; एव—सभी; गङ्गाम्—गंगा नदी के; अनु—किनारे-किनारे; च—भी; भारत—हे भरतवंशी (परीक्षित महाराज); जगाम—देखने गये; नैमिषम्—नैमिषारण्य; यत्र—जहाँ; ऋषयः—बड़े-बड़े मुनि; सत्रम्—विशाल यज्ञ; आसते—सम्पन्न कर रहे थे।

भगवान् बलराम ने चौड़े बिन्दु-सरस सरोवर, त्रितकूप, सुदर्शन, विशाल, ब्रह्मतीर्थ, चक्रतीर्थ तथा पूर्ववाहिनी सरस्वती को देखा। हे भारत, वे यमुना तथा गंगा नदियों के तटवर्ती सारे तीर्थस्थानों में गये और तब वे नैमिषारण्य आये, जहाँ ऋषिगण बृहद् यज्ञ (सत्र) सम्पन्न कर रहे थे।

तमागतमभिप्रेत्य मुनयो दीर्घसत्रिणः ।
अभिनन्द्य यथान्यायं प्रणम्योत्थाय चार्चयन् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; आगतम्—आया हुआ; अभिप्रेत्य—पहचान कर; मुनयः—मुनियों ने; दीर्घ—लम्बे समय तक; सत्रिणः—यज्ञ सम्पन्न कर रहे; अभिनन्द्य—सत्कार करके; यथा—जिस तरह; न्यायम्—उचित, सही; प्रणम्य—नमस्कार करके; उत्थाय—उठ कर; च—तथा; आर्चयन्—पूजा की।

भगवान् के आगमन पर उन्हें पहचान लेने पर दीर्घकाल से यज्ञ कर रहे मुनियों ने खड़े होकर, नमस्कार करके तथा उनकी पूजा करके समुचित ढंग से उनका सत्कार किया।

सोऽर्चितः सपरीवारः कृतासनपरिग्रहः ।
रोमहर्षणमासीनं महर्षेः शिष्यमैक्षत ॥ २२॥

शब्दार्थ

सः—वह; अर्चितः—पूजित; स—सहित; परीवारः—अपनी टोली; कृत—कर चुकने पर; आसन—आसन की; परिग्रहः—स्वीकृति; रोमहर्षणम्—रोमहर्षण सूत को; आसीनम्—बैठा हुआ; महा-ऋषेः—ऋषियों में सबसे बड़े व्यासदेव के; शिष्यम्—शिष्य को; ऐक्षत—देखा।

अपनी टोली समेत इस प्रकार पूजित होकर भगवान् ने सम्मान-आसन ग्रहण किया। तब उन्होंने देखा कि व्यासदेव का शिष्य रोमहर्षण बैठा ही रहा था।

अप्रत्युत्थायिनं सूतमकृतप्रह्वणाञ्जलिम् ।
अध्यासीनं च तान्विप्रांश्चुकोपोद्वीक्ष्य माधवः ॥ २३॥

शब्दार्थ

अप्रत्युत्थायिनम्—खड़ा न होने वाले; सूतम्—सूत पुत्र (क्षत्रिय पिता तथा ब्राह्मण माता के संकर विवाह से उत्पन्न) को; अकृत—जिसने नहीं किया; प्रह्वण—नमस्कार; अञ्जलिम्—हाथ जोड़ना; अध्यासीनम्—ऊँचे स्थान पर आसीन; च—तथा; तान्—उन; विप्रान्—विद्वान ब्राह्मणों की अपेक्षा; चुकोप—क्रुद्ध हुआ; उद्वीक्ष्य—देखकर; माधवः—बलराम।

श्री बलराम यह देखकर अत्यन्त क्रुद्ध हुए कि सूत जाति का यह सदस्य किस तरह उठकर खड़े होने, नमस्कार करने या हाथ जोड़ने में विफल रहा है और किस तरह समस्त विद्वान ब्राह्मणों से ऊपर बैठा हुआ है।

तात्पर्य : रोमहर्षण ने वरिष्ठ पुरुष का स्वागत करने की आदर्श विधियों में से किसी के द्वारा बलराम का सत्कार नहीं किया। साथ ही, निम्न जाति का होने पर भी वह श्रेष्ठ ब्राह्मणों की सभा में ऊँचे आसन पर बैठा रहा।

यस्मादसाविमान्विप्रानध्यास्ते प्रतिलोमजः ।
धर्मपालांस्तथैवास्मान्वधमर्हति दुर्मतिः ॥ २४॥

शब्दार्थ

यस्मात्—चूँकि; असौ—वह; इमान्—इन; विप्रान्—ब्राह्मणों की अपेक्षा; अध्यास्ते—ऊँचे स्थान पर बैठा है; प्रतिलोम-जः—अनुचित संकर विवाह से उत्पन्न; धर्म—धर्म के सिद्धान्तों का; पालान्—रक्षक; तथा एव—भी; अस्मान्—मुझसे; वधम्—मृत्यु; अर्हति—पात्र है; दुर्मतिः—मूर्ख।

[बलराम ने कहा]: चूँकि अनुचित रीति से संकर विवाह से उत्पन्न यह मूर्ख इन सारे ब्राह्मणों से ऊपर बैठा है और मुझ धर्म-रक्षक से भी ऊपर, इसलिए यह मृत्यु का पात्र है।

ऋषेर्भगवतो भूत्वा शिष्योऽधीत्य बहूनि च ।
सेतिहासपुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वशः ॥ २५ ॥
अदान्तस्याविनीतस्य वृथा पण्डितमानिनः ।
न गुणाय भवन्ति स्म नटस्येवाजितात्मनः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

ऋषेः—ऋषि (व्यासदेव) का; भगवतः—ईश्वर के अवतार; भूत्वा—बन कर; शिष्यः—शिष्य; अधीत्य—अध्ययन करके; बहूनि—अनेक; च—तथा; स—सहित; इतिहास—पौराणिक इतिहास; पुराणानि—तथा पुराण; धर्म-शास्त्राणि—मनुष्य के धार्मिक कर्तव्यों को बताने वाले शास्त्र; सर्वशः—पूर्णरूपेण; अदान्तस्य—उसके लिए जो आत्मसंयमी नहीं है; अविनीतस्य—अविनीत; वृथा—व्यर्थ ही; पण्डित—विद्वान; मानिनः—अपने को सोचते हुए; न गुणाय—सद्गुणों वाला नहीं; भवन्ति स्म—वे हो गये हैं; नटस्य—मंच पर नाटक करने वालों का; इव—सदृश; अजित—न जीता हुआ; आत्मनः—जिसका मन।

यद्यपि वह दिव्य मुनि व्यास का शिष्य है और उसने उनसे अनेक शास्त्रों को भलीभाँति सीखा है, जिसमें धार्मिक कर्तव्यों की संहिताएँ, इतिहास तथा पुराण सम्मिलित हैं, किन्तु इस सारे अध्ययन से उसमें सद्गुण उत्पन्न नहीं हुए हैं। प्रत्युत उसका शास्त्र अध्ययन किसी नट के द्वारा अपना अंश अध्ययन करने की तरह है, क्योंकि वह न तो आत्मसंयमी है, न विनीत है। वह व्यर्थ ही विद्वान होने का स्वाँग रचता है, यद्यपि वह अपने मन को जीत सकने में विफल रहा है।

तात्पर्य : कोई यह तर्क कर सकता है कि रोमहर्षण ने बलराम को न पहचानने की निर्दोष भूल की, किन्तु ऐसे तर्क का निराकरण बलराम द्वारा की गई तीखी आलोचना से हो जाता है।

एतदर्थो हि लोकेऽस्मिन्नवतारो मया कृतः ।
वध्या मे धर्मध्वजिनस्ते हि पातकिनोऽधिकाः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

एतत्—इसी; अर्थः—प्रयोजन के लिए; हि—निस्सन्देह; लोके—संसार में; अस्मिन्—इस; अवतारः—अवतार; मया—मेरे द्वारा; कृतः—किया गया; वध्याः—मारे जाने के लिए; मे—मेरे द्वारा; धर्म-ध्वजिनः—धार्मिक बनने का स्वाँग रचने वाले; ते—वे; हि—निस्सन्देह; पातकिनः—पापी; अधिकाः—सर्वाधिक।

इस संसार में मेरे अवतार का उद्देश्य ही यह है कि ऐसे दिखावटी लोगों का वध किया जाय, जो धार्मिक बनने का स्वाँग रचते हैं। निस्सन्देह, वे सबसे बड़े पापी धूर्त हैं।

तात्पर्य : भगवान् बलदेव रोमहर्षण के अपराध की अनदेखी नहीं करना चाह रहे थे। भगवान् ने इसीलिए अवतार लिया था कि जो अपने को महान् धार्मिक नेता घोषित करते हैं, किन्तु भगवान् तक का आदर नहीं करते, वे उनका सफाया कर दें।

एतावदुक्त्वा भगवान्निवृत्तोऽसद्वधादपि ।
भावित्वात्तं कुशाग्रेण करस्थेनाहनत्प्रभुः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

एतावत्—इतना; उक्त्वा—कह कर; भगवान्—भगवान्; निवृत्तः—रुक गये; असत्—अशुभ; वधात्—मारने से; अपि—यद्यपि; भावित्वात्—यद्यपि हटाया नहीं जा सकता था; तम्—उसको, रोमहर्षण को; कुश—कुश तृण की; अग्रेण—नोक से; कर—हाथ में; स्थेन—पकड़ा हुआ; अहनत्—मार डाला; प्रभुः—भगवान् ने।

[शुकदेव गोस्वामी ने कहा] : यद्यपि भगवान् बलराम ने अपवित्र लोगों को मारना बन्द कर दिया था, किन्तु रोमहर्षण की मृत्यु तो होनी ही थी। इसलिए ऐसा कहकर भगवान् ने कुश घास का एक तिनका उठाकर और उसकी नोक से छूकर उसे मार डाला।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, ''श्री बलराम ने कुरुक्षेत्र के युद्ध में भाग लेने से अपने को दूर रखा था फिर भी अपने पद के कारण धार्मिक सिद्धान्तों की पुनर्स्थापना उनका प्रमुख कर्तव्य था। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए उन्होंने कुश के तिनके से प्रहार करके रोमहर्षण सूत को मार डाला। वह तिनका घास की एक पत्ती मात्र था। यदि कोई व्यक्ति यह प्रश्न करे कि बलरामजी ने एक कुश के प्रहार से रोमहर्षण का वध किस प्रकार कर दिया, तो इसका उत्तर *श्रीमद्भागवत* में *प्रभु* शब्द के प्रयोग द्वारा दिया गया है। भगवान् का पद सदैव दिव्य है; क्योंकि वे सर्वशक्तिमान हैं, अतएव वे भौतिक नियमों तथा सिद्धान्तों का पालन किए बिना इच्छानुसार कार्य कर सकते हैं। अतएव एक कुश के प्रहार से रोमहर्षण सूत का वध करना उनके लिए सम्भव था।''

हाहेतिवादिनः सर्वे मुनयः खिन्नमानसाः ।
ऊचुः सङ्कर्षणं देवमधर्मस्ते कृतः प्रभो ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

हा-हा—हाय, हाय; इति—इस प्रकार; वादिनः—कहते हुए; सर्वे—सभी; मुनयः—मुनिगण; खिन्न—विचलित; मानसाः—मन वाले; ऊचुः—बोले; सङ्कर्षणम्—बलराम को; देवम्—भगवान्; अधर्मः—अधार्मिक कृत्य; ते—तुम्हारे द्वारा; कृतः—किया गया; प्रभो—हे प्रभु।

सारे मुनि अत्यन्त कातरता से ''हाय हाय'' कह कर चिल्ला पड़े। उन्होंने भगवान् संकर्षण

से कहा, ''हे प्रभु, आपने यह एक अधार्मिक कृत्य किया है।''

अस्य ब्रह्मासनं दत्तमस्माभिर्यदुनन्दन ।
आयुश्चात्माक्लमं तावद्यावत्सत्रं समाप्यते ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

अस्य—इसका; ब्रह्म-आसनम्—गुरु का आसन; दत्तम्—दिया हुआ; अस्माभिः—हमारे द्वारा; यदु-नन्दन—हे यदुओं के प्रिय; आयुः—दीर्घ जीवन; च—तथा; आत्म—शरीर से; अक्लमम्—कष्ट से मुक्ति; तावत्—तब तक के लिए; यावत्—जब तक; सत्रम्—यज्ञ; समाप्यते—समाप्त हो जाता है।

''हे यदुओं के प्रिय, हमने उसे आध्यात्मिक गुरु का आसन प्रदान किया था और उसे दीर्घ आयु के लिए एवं जब तक यह सत्र चलता है तब तक भौतिक पीड़ा से मुक्ति के लिए वचन दिया था।

तात्पर्य : यद्यपि रोमहर्षण ब्राह्मण नहीं था, वह संकर विवाह से उत्पन्न प्रतिलोमज था, किन्तु उसे एकत्रित मुनियों ने वह पद प्रदान किया था और इस तरह उसे *ब्रह्मासन* अर्थात् प्रमुख कार्यकारी पुरोहित का आसन प्राप्त था।

अजानतैवाचरितस्त्वया ब्रह्मवधो यथा ।
योगेश्वरस्य भवतो नाम्नायोऽपि नियामकः ॥ ३१ ॥
यद्येतद्ब्रह्महत्यायाः पावनं लोकपावन ।
चरिष्यति भवाँल्लोकसङ्ग्रहोऽनन्यचोदितः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

अजानता—न जानते हुए; एव—केवल; आचरितः—किया गया; त्वया—तुम्हारे द्वारा; ब्रह्म—ब्राह्मण का; वधः—वध; यथा—वास्तव में; योग—योगशक्ति के; ईश्वरस्य—भगवान् का; भवतः—आप; न—नहीं; आम्नायः—शास्त्रों का आदेश; अपि—भी; नियामकः—नियंत्रित करने वाला; यदि—यदि; एतत्—इसके लिए; ब्रह्म—ब्राह्मण की; हत्यायाः—हत्या; पावनम्—शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त; लोक—संसार का; पावन—हे पवित्रकर्ता; चरिष्यति—सम्पन्न करता है; भवान्—आप; लोक-सङ्ग्रहः—आम लोगों की भलाई; अनन्य—अन्य किसी के द्वारा नहीं; चोदितः—प्रेरित।

''आपने अनजाने में एक ब्राह्मण का वध कर दिया है। हे योगेश्वर, शास्त्रों के आदेश भी आपको आज्ञा नहीं दे सकते। किन्तु यदि आप स्वेच्छा से ब्राह्मण के इस वध के लिए संस्तुत शुद्धि कर लेंगे, तो हे सारे जगत के शुद्धिकर्ता, सामान्य लोग आपके उदाहरण से अत्यधिक लाभान्वित होंगे।''

श्रीभगवानुवाच

चरिष्ये वधनिर्वेशं लोकानुग्रहकाम्यया ।
नियमः प्रथमे कल्पे यावान्स तु विधीयताम् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; चरिष्ये—मैं करूँगा; वध—हत्या करने के लिए; निर्वेशम्—प्रायश्चित्त; लोक—सामान्य लोगों के लिए; अनुग्रह—दया; काम्यया—दिखाने की इच्छा से; नियमः—आदेश; प्रथमे—प्रथम श्रेणी का; कल्पे—अनुष्ठान; यावान्—जितना; सः—वह; तु—निस्सन्देह; विधीयताम्—आप विधान करें, निर्धारित करें।

भगवान् ने कहा : मैं इस हत्या के लिए अवश्य ही प्रायश्चित करूँगा क्योंकि मैं सामान्य लोगों के प्रति दया दिखाना चाहता हूँ। इसलिए कृपा करके मुझे जो कुछ अनुष्ठान सर्वप्रथम करना हो, उसका निर्धारण करें।

दीर्घमायुर्बतैतस्य सत्त्वमिन्द्रियमेव च ।
आशासितं यत्तद्ब्रूते साधये योगमायया ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

दीर्घम्—लम्बी; आयुः—उम्र; बत—ओह; एतस्य—इसके लिए; सत्त्वम्—शक्ति; इन्द्रियम्—इन्द्रिय शक्ति; एव च—तथा; आशासितम्—वचन दिया हुआ; यत्—जो; तत्—वह; ब्रूते—कहिये; साधये—मैं करवा दूँगा; योग-मायया—अपनी योगशक्ति से।

हे मुनियो, कुछ कहिये तो। आपने उसे जो भी दीर्घायु, शक्ति तथा इन्द्रिय शक्ति के लिए वचन दिये हैं, उन्हें मैं पूरा करवा दूँगा।

ऋषय ऊचुः
अस्त्रस्य तव वीर्यस्य मृत्योरस्माकमेव च ।
यथा भवेद्वचः सत्यं तथा राम विधीयताम् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

ऋषयः ऊचुः—ऋषियों ने कहा; अस्त्रस्य—(कुश) हथियार का; तव—तुम्हारे; वीर्यस्य—शक्ति का; मृत्योः—मृत्यु का; अस्माकम्—हमारा; एव च—भी; यथा—जिससे; भवेत्—बना रह सके; वचः—वचन; सत्यम्—सच; तथा—इस प्रकार; राम—हे राम; विधीयताम्—व्यवस्था कर दें।

ऋषियों ने कहा : हे राम, आप ऐसा करें कि आपकी तथा आपके कुश अस्त्र की शक्ति एवं साथ ही हमारा वचन तथा रोमहर्षण की मृत्यु—ये सभी बने रहें।

श्रीभगवानुवाच
आत्मा वै पुत्र उत्पन्न इति वेदानुशासनम् ।
तस्मादस्य भवेद्वक्ता आयुरिन्द्रियसत्त्ववान् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; आत्मा—आत्मा; वै—निस्सन्देह; पुत्रः—पुत्र; उत्पन्नः—उत्पन्न; इति—इस प्रकार; वेद-अनुशासनम्—वेदों का आदेश; तस्मात्—इसलिए; अस्य—इसका (पुत्र); भवेत्—होगा; वक्ता—व्याख्यान देने वाला, वाचक; आयुः—दीर्घायु; इन्द्रिय—प्रबल इन्द्रियाँ; सत्त्व—तथा शारीरिक बल; वान्—से युक्त।

भगवान् ने कहा : वेद हमें उपदेश देते हैं कि मनुष्य की आत्मा ही पुत्र रूप में पुनः जन्म लेती है। इस तरह रोमहर्षण का पुत्र पुराणों का वक्ता बने और वह दीर्घायु, प्रबल इन्द्रियों तथा बल से युक्त हो।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी ने भगवान् बलराम द्वारा बतलाये गये सिद्धान्त की व्याख्या के लिए निम्नलिखित वैदिक श्लोक उद्धृत किया है—

अंगाद् अंगात् सम्भवसि

हृदयाद् अभिजायसे।

आत्मा वै पुत्रनामासि

संजीव शरदः शतम्॥

''तुमने मेरे विविध अंगों से जन्म लिया है और मेरे हृदय से ही उत्पन्न हुए हो। तुम मेरे पुत्र के रूप में मेरे आत्मा हो। तुम सौ शरद् ऋतुओं तक जीवित रहो।'' यह श्लोक *शतपथ ब्राह्मण* (१४.९.८.४) में तथा *बृहदारण्यक उपनिषद्* (६.४.८) में आया है।

किं वः कामो मुनिश्रेष्ठा ब्रूताहं करवाण्यथ ।
अजानतस्त्वपचितिं यथा मे चिन्त्यतां बुधाः ॥ ३७॥

शब्दार्थ

किम्—क्या; वः—तुम्हारी; कामः—इच्छा; मुनि—मुनियों में; श्रेष्ठाः—हे श्रेष्ठ; ब्रूत—कहें; अहम्—मैं; करवाणि—करूँगा; अथ—और तब; अजानतः—कौन नहीं जानता; तु—निस्सन्देह; अपचितिम्—प्रायश्चित्त; यथा—उचित रीति से; मे—मेरे लिए; चिन्त्यताम्—सोचें; बुधाः—हे बुद्धिमान जनो।

हे मुनिश्रेष्ठो, आप मुझे अपनी इच्छा बतला दें। मैं उसे अवश्य पूरा करूँगा। और हे बुद्धिमान आत्माओ, मेरे लिए समुचित प्रायश्चित्त का भलीभाँति निर्धारण कर दें, क्योंकि मैं यह नहीं जानता कि वह क्या हो सकता है।

तात्पर्य : भगवान् बलराम सुयोग्य ब्राह्मणों के समक्ष विनीत बनकर आम जनता के लिए पक्का उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

ऋषय ऊचुः
इल्वलस्य सुतो घोरो बल्वलो नाम दानवः ।
स दूषयति नः सत्रमेत्य पर्वणि पर्वणि ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

ऋषयः ऊचुः—ऋषियों ने कहा; इल्वलस्य—इल्वल का; सुतः—पुत्र; घोरः—भयावह; बल्वलः नाम—बल्वल नामक; दानवः—असुर; सः—वह; दूषयति—दूषित कर देता है; नः—हमारा; सत्रम्—यज्ञ; एत्य—आकर; पर्वणि पर्वणि—हर प्रतिपदा को।

ऋषियों ने कहा : एक भयावना असुर, जिसका नाम बल्वल है और जो इल्वल का पुत्र है, हर प्रतिपदा को अर्थात् शुक्लपक्ष के पहले दिन यहाँ आता है और हमारे यज्ञ को दूषित कर देता है।

तात्पर्य : सर्वप्रथम ऋषिगण बलरामजी को बतलाते हैं कि वे उनसे क्या अनुग्रह चाहते हैं।

तं पापं जहि दाशार्ह तन्नः शुश्रूषणं परम् ।
पूयशोणितविन्मूत्रसुरामांसाभिवर्षिणम् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस; पापम्—पापी व्यक्ति को; जहि—मार डालिये; दाशार्ह—हे दशार्ह के वंशज; तत्—वह; नः—हमारी; शुश्रूषणम्—सेवा; परम्—सर्वश्रेष्ठ; पूय—पीब; शोणित—रक्त; वित्—मल; मूत्र—मूत्र; सुरा—शराब; मांस—तथा मांस; अभिवर्षिणम्—नीचे गिराता है।

हे दशार्ह-वंशज, कृपा करके उस पापी असुर का वध कर दें, जो हमारे ऊपर पीब, रक्त, मल, मूत्र, शराब तथा मांस डाल जाता है। आप हमारे लिए यही सबसे उत्तम सेवा कर सकते हैं।

ततश्च भारतं वर्षं परीत्य सुसमाहितः ।
चरित्वा द्वादशमासांस्तीर्थस्नायी विशुध्यसि ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; च—तथा; भारतम् वर्षम्—भारतवर्ष की; परीत्य—परिक्रमा करके; सु-समाहितः—गम्भीर मुद्रा में; चरित्वा—तपस्या करके; द्वादश—बारह; मासान्—महीनों; तीर्थ—तीर्थस्थल; स्नायी—स्नान करके; विशुध्यसि—शुद्ध हो सकोगे।

तत्पश्चात् आप बारह महीनों तक गम्भीर ध्यान के भाव में भारतवर्ष की परिक्रमा करें और तपस्या करते हुए विविध पवित्र तीर्थस्थानों में स्नान करें। इस तरह आप विशुद्ध हो सकेंगे।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी इंगित करते हैं कि *विशुध्यसि* शब्द का अर्थ है कि सामान्य जनता के समक्ष ऐसा सम्यक उदाहरण प्रस्तुत करके बलराम निर्मल यश प्राप्त करेंगे।

श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, ''ब्राह्मणजन भगवान् का तात्पर्य समझ गये इसलिए उन्होंने सुझाव दिया कि वे ऐसा प्रायश्चित्त करें जिससे उन सबों को लाभ हो।''

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''दन्तवक्र, विदूरथ तथा रोमहर्षण का वध'' नामक अठहत्तरवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।